

अफ़गानिस्तान में अमरीकी-भारत सहयोग: क्या भारत की “रणनीतिक स्वायत्तता” सतत बनी रह सकती है ?
U.S.-India Cooperation in Afghanistan: Is India’s “Strategic Autonomy” Sustainable?

माणिक सूरी

Manik Suri

August 13, 2012

जून में आयोजित तीसरे वार्षिक अमरीकी-भारत रणनीतिक संवाद ने कई लोगों को आश्वस्त कर दिया है कि दोनों देशों की “रणनीतिक भागीदारी” का अब विस्तार हो रहा है. और यह भी अकारण नहीं है कि आतंकवाद विरोधी कार्रवाइयों में समन्वय के काम में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है और ज़मीन, समुद्र और हवा में व्यापक स्तर पर संयुक्त सैनिक कार्रवाइयाँ होने लगी हैं और ईरान और म्यांमार जैसे संवेदनशील मुद्दों पर स्पष्ट बातचीत होने लगी है और इससे यह संकेत मिलता है कि दोनों देशों के संबंध गहराने लगे हैं. लेकिन संवाद के लिए होने वाले उच्चस्तरीय दौरों की झड़ी के बीच लियॉन पनेटा ने स्वीकार किया है कि “अब समय आ गया है कि अब हम इन संबंधों को स्थायी बनाएँ”. आज भारतीय और अमरीकी नीति-निर्माताओं को यह अवसर मिला है कि वे विश्व के सबसे अधिक तकलीफ़ज़दा देशों में से एक अफ़गानिस्तान में आपसी सहयोग करें.

जैसे- जैसे अमरीका का राष्ट्रपति चुनाव नज़दीक आ रहा है, दोनों ही उम्मीदवार सार्वजनिक तौर पर आश्वासन दे रहे हैं कि 2014 तक अफ़गानिस्तान से आखिरी अमरीकी सैनिकों की वापसी हो जाएगी. राष्ट्रपति बराक ओबामा ने इस पतझड़ तक 23,000 सैनिकों को वापस घर बुलाने का आश्वासन दिया है और मित्रदेश भी इसका अनुसरण कर रहे हैं. फ्रांस ने इस वर्ष के अंत तक सैनिकों की वापसी में तेज़ी लाने के प्रयास शुरू कर दिए हैं. पिछले दशक में 100,000 सैनिकों की तैनाती पर लगभग आधा ट्रिलियन डॉलर की रकम खर्च करने के बाद अमरीका जल्द ही उन विदेशी ताकतों की लंबी कतार का अनुसरण करेगा जो काफ़ी पहले ही समझ आने पर अफ़गानिस्तान छोड़कर स्वदेश वापस चली गई हैं.

लेकिन जैसे-जैसे सभी सरकारें अपने दरवाज़े बंद करती जा रही हैं, वैसे - वैसे भारत सहित अन्य देश जो अभी भी अफ़गानिस्तान में मौजूद हैं, उनके लिए स्थिति भयावह होती जा रही है. यद्यपि सभी शक्तियों की वापसी से उत्पन्न शून्य सन्निकट नहीं है, लेकिन अफ़गानिस्तान के क्षितिज पर अस्थिरता के बादल उमड़ने लगे हैं, स्थानीय भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा है, दुराग्रही युद्धपिपासु सिपहसालार सिर उठाने लगे हैं और फिर से सक्रिय होने के लिए तालिबान ने सन् 2014 में अफ़गान राष्ट्रपति हामिद करज़ाई का कार्यकाल समाप्त होने के बाद सत्ता में वापसी के लिए बातचीत शुरू कर दी है. जैसे कि ये घरेलू चुनौतियाँ काफ़ी न हों, अफ़गानिस्तान के पड़ोसी देशों ने उसकी अप्रयुक्त खनिज संपदा को हासिल करने के लिए तेज़ी से चालें चलना शुरू कर दिया है. काबुल के हाल ही के निर्णय के अनुसार उसने चीन के साथ एक सुरक्षा करार पर दस्तखत किए हैं ताकि यह करार अमरीका, भारत और यू.के. के करारों की जगह ले सके. यह करार हमें एक बार फिर से याद दिलाता है कि अफ़गानिस्तान अब भी इक्कीसवीं सदी के “बड़े खेल” का केंद्र बना हुआ है.

भारत से भी अधिक काबुल की मौजूदा लोकतांत्रिक सरकार को बचाने के लिए कई देशों की प्रतिष्ठा दाँव पर लगी है. नब्बे के पूरे दशक में भारत तालिबान का विरोध करता रहा है, क्योंकि तालिबान ने पाकिस्तान के उग्रवादी संगठन जमायते उलेमा-ए-इस्लाम पार्टी के साथ विचारधारा के स्तर पर नज़दीकी रिश्ता बनाए रखा

था और भारत-भर में आतंकवादी हमलों के लिए ज़िम्मेदार अनेक आतंकवादियों के लिए सुरक्षित शरणस्थली बन गया था. एक कट्टरवादी पार्टी की सत्ता में वापसी से भारत के अपने अंदरूनी इलाकों की सुरक्षा के लिए भी खतरा पैदा हो जाएगा, क्योंकि वर्तमान आतंकवाद विरोधी प्रयासों को भारतीय समर्थन प्राप्त होता रहा है. अपनी घरेलू सुरक्षा के साथ-साथ तेज़ी से बढ़ती अपनी अर्थव्यवस्था को और बढ़ावा देने के लिए मध्य एशिया के ऊर्जा बहल देशों तक अपनी पहुँच बनाने के लिए नई दिल्ली के लिए अफ़गानी स्थिरता भी बहुत आवश्यक है.

ज़ाहिर है कि कुछ प्रेक्षकों को अफ़गानिस्तान की दीर्घकालीन स्थिरता के लिए भारत की क्षमता के बारे में संदेह है और वे हाल ही के अभूतपूर्व बिजली के संकट को मौजूदा घरेलू चुनौती के उदाहरण के रूप में पेश करते हैं. फिर भी अफ़गानिस्तान के बारे में भारत का रिकॉर्ड बहुत अच्छा है, चूँकि युद्धग्रस्त देश के पाँचवें सबसे बड़े द्विपक्षीय दानकर्ता भारत सरकार ने बुनियादी ढाँचे, बिजली, कृषि, स्वास्थ्य और शिक्षा से संबंधित परियोजनाओं के लिए पिछले एक दशक में \$2 बिलियन डॉलर से अधिक अनुदान देने का आश्वासन दिया है. भारतीय इंजीनियरों ने अफ़गानी संसद भवन का निर्माण किया है, दक्षिणी अफ़गानिस्तान में बंदरगाह पहुँचने के मुख्य मार्ग का निर्माण किया है और कंधार और काबुल को जोड़ने वाले प्रमुख महामार्गों की मरम्मत की है. यद्यपि नैटो के क्षमता निर्माण के प्रयास अभी भी जारी हैं, लेकिन भारत ने अन्य सेवकों के अलावा अफ़गानी शिक्षकों, इंजीनियरों, नर्सों और नागरिक सेवकों को सफलतापूर्वक प्रशिक्षित भी कर दिया है. कई दशकों तक संपर्क होने के कारण भारतीय नेता व्यक्तिगत स्तर पर गहरे संबंधों का लाभ उठाते हुए अपने समकक्ष अफ़गानियों के साथ एक जैसी “सांस्कृतिक धारा” का अनुभव करते हैं और ये उपलब्धियाँ दीर्घकालीन सांस्कृतिक संबंधों से उदित होकर और इसकी हाल ही की मानवीय मदद से प्रोत्साहित होकर अफ़गानिस्तान में भारत की पर्याप्त “सॉफ़्ट पावर” से अनबँधी हैं.

अमरीकी नीति-निर्माताओं ने यह स्वीकार किया है कि अफ़गानिस्तान की बचकानी संस्थाएँ भारतीय समर्थन से ही कट्टरवाद के ज्वार को काबू में रखते हुए अफ़गानी दिलो-दिमाग को जीत सकती हैं. भारत की प्रमाणित ज़मीनी क्षमताओं के आलोक में वाशिंगटन को आशा है कि जैसे ही अमरीकी सैनिक इस इलाके को खाली करेंगे भारत इस इलाके में स्थिरता लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा. और भारत ऐसा कर भी सकता है, लेकिन अपनी शर्तों पर. नई दिल्ली पहले से ही अफ़गानी सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए प्रतिबद्ध है. पिछले अक्टूबर में नई दिल्ली ने काबुल के साथ रणनीतिक भागीदारी के करार पर दस्तखत किए हैं, जिसमें अफ़गानी राष्ट्रीय सुरक्षा बलों को प्रशिक्षण देने, उपकरण मुहैया कराने और क्षमता-निर्माण के कार्यक्रमों के लिए सहायता देने का वचन दिया गया है. ऐसा करने के लिए भारत की तत्परता देश की स्थिरता के लिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि नैटो की विदेशी सेनाओं के निष्क्रमण की रणनीति इसी बात पर निर्भर है कि अफ़गानी सैनिकों और पुलिस बल को सक्षम बनाने का संक्रमणकालीन दायित्व भारत निभाए.

मोटे तौर पर पाकिस्तानी मानसिकता का विरोध झेलने के कारण अमरीकी नीति-निर्माता अब अफ़गानिस्तान में भारत के प्रयासों का समर्थन करने लगे हैं. अमरीकी सोच में यह परिवर्तन मोटे तौर पर व्यापक रणनीतिक पुनः अभिमुखीकरण के कारण ही हुआ है. इसकी ही चर्चा अमरीकी रक्षा सचिव पेनेटा के हाल ही के घोषणा पत्र में की गई है, जिसमें कहा गया है कि भारत जिसकी नाभिकीय महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति लगभग एक दशक पूर्व ही की गई है, एशिया में अमरीका की विदेश नीति की “धुरी” है. फिर भी अफ़गानिस्तान में भारत और अमरीका के वर्तमान हितों को सबसे अच्छी तरह से एक ही शब्द से व्यक्त किया जा सकता है और वह

है, संयोजन अर्थात् कन्वर्जेंस. यह शब्द समन्वय से बहुत अलग है, क्योंकि इसमें मिलकर काम करने का भाव निहित है, लेकिन यह स्थिति अभी भी भारत और अमरीका के संबंधों में नहीं आई है. इस अंतराल का मुख्य कारण है, द्विपक्षीय संबंधों के अलग-अलग रूप. ये रूप दोनों पक्षों की प्रतिस्पर्धी आत्मधारणाओं से प्रकट होते हैं, जिन्हें अनित मुखर्जी और मनोहर त्यागराज “अपवादवाद” का संघर्ष कहते हैं. जहाँ एक ओर अमरीकी अधिकारी भविष्योन्मुखी रुख (जिसमें अतीत के सुख-दुःख का लेख-जोखा नहीं रहता) अपनाते पर जोर देते हैं, वहीं भारतीय नीति-निर्माता अतीत के प्रति बहुत संवेदनशील बने रहते हैं और किसी गुट से जुड़ने के प्रति विरक्ति का भाव बनाए रखते हैं - और वे यह भी नहीं चाहते कि उसे हेकड़ी दिखाने वाले पश्चिमी गुट के “राग में राग मिलाने वाले” पिछलग्गू देश के रूप में देखा जाए.

नई दिल्ली स्थित नीति अनुसंधान केंद्र के अध्यक्ष और अग्रणी टिप्पणीकार प्रताप भानु मेहता ने बड़े विश्वासपूर्वक यह तर्क दिया है कि आज़ादी के बाद से ही भारत की विदेश नीति न तो सत्ता की भूख से परिचालित विचारधारा की अनिवार्यता से प्रेरित रही है और न ही न्यायपूर्ण विश्व के व्यापक आधार पर टिकी रही है. इसके बजाय विदेशों में इससे प्रेरित कार्य मोटे तौर पर “सावधानीपूर्वक विवेक का इस्तेमाल करते हुए” “रणनीतिक स्वायत्तता” पर आधारित होने चाहिए थे. अफ़गानिस्तान के संबंध में भी नई दिल्ली का नीतिगत आधार यही रहा है. अमरीकी-भारत रणनीतिक संवाद शुरू होने के ठीक एक सप्ताह पहले भारत के विदेश मंत्री एस.एम. कृष्णा ने चीन और भारत के नेतृत्व में गठित यूरेशियन समूह शंघाई सहयोग संगठन (एससीओ) की बीजिंग में आयोजित शिखर वार्ता में भाग लिया था, जिसमें भारत चाहता था कि उसकी हैसियत प्रेक्षक से बढ़ाकर पूर्णकालिक सदस्य के रूप में कर दी जाए. भारतीय नीति-निर्माता ऊर्जा, व्यापार, नशीली दवाओं की तस्करी और आतंकवाद विरोधी कार्रवाई के संबंध में मध्य एशियाई देशों के साथ संबंध बढ़ाते हुए इसे अफ़गानिस्तान के आसपास के क्षेत्र में अपने “लचीलेपन” को बनाए रखने का एक उपाय समझते हैं.

संसाधनों और प्रभाव के लिए विशेषकर चीन के साथ प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने से भारत का रणनीतिक विस्तार धीरे-धीरे संघर्ष में परिणत हो सकता है. अभी हाल तक अधिकांश विश्लेषकों को आशा थी कि अफ़गानिस्तान के पुनर्निर्माण में चीन अपनी आर्थिक भूमिका सीमित ही रखना चाहता है. यद्यपि चीन ने कानून को लागू करने वाले अफ़गानी अधिकारियों के साथ मिलकर नशीली दवाओं की तस्करी को रोकने के लिए पहल करने में अग्रणी भूमिका निभाई थी, लेकिन पिछली बार की तरह उसने सुरक्षा के मोर्चे पर अपनी भूमिका को सीमित ही रखा. परंतु इस साल के आरंभ में बीजिंग ने तालिबान के साथ समझौता वार्ता करने के लिए अभूतपूर्व रूप में त्रिपक्षीय बैठक के लिए अफ़गानिस्तान और पाकिस्तान के नेताओं को आमंत्रित किया था. और पिछले जून में तो बीजिंग ने काबुल के साथ एक ऐसे रणनीतिक करार पर दस्तखत किए हैं जिससे यह संकेत मिलता है कि भले ही चीन अफ़गान राष्ट्रीय सुरक्षा बलों की सहायता के लिए बहुपक्षीय निधि में योगदान न करे, फिर भी अफ़गानी सैनिकों को सीधे प्रशिक्षण तो दे ही सकता है.

रणनीतिक स्वायत्तता से भारत को लचीलापन तो मिल सकता है, लेकिन यह लगातार महँगे से महँगा ही साबित हो सकता है. यद्यपि बीजिंग और नई दिल्ली के हित अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन अफ़गानिस्तान में चीन की बढ़ती आक्रामकता भारत को अफ़गानिस्तान में अपना हाथ आजमाने के लिए विवश कर सकती है. नैटो सैनिकों के तेज़ी से सन्निकट आते निष्क्रमण के कारण भारतीय नीति-निर्माताओं को अफ़गानी स्थिरता को बनाए रखने के लिए सावधानीपूर्वक अमरीका के साथ निकट सहयोग बनाने पर विचार करना

चाहिए. परंतु ऐसा करते हुए वैश्विक महाशक्ति बनने की आकांक्षा रखने वाले भारत को व्यावहारिक विश्वास के बदले सीधे टकराव मोल लेना होगा.

माणिक सूरी उच्च भारतीय अध्ययन (कैसी) के पैनिसल्वेनिया केंद्र में विजिटिंग फ़ेलो हैं और हार्वर्ड लॉ कॉलेज में जे.डी.कंडिडेट हैं.

हिंदी अनुवाद: विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@hotmail.com>